अध्याय 2

2

सत्ता में साझेदारी की कार्यप्रणाली

परिचय

लोकतंत्र की यात्रा के क्रम में पिछली कक्षा में हमारा परिचय राजनीति की कुछ बुनियादी धारणाओं, संस्थाओं एवं लोकतंत्र के नियमों कायदों से हुआ था । अब हम सिद्धांतों एवं संस्थाओं की जगह पर अपना ध्यान राजनैतिक प्रक्रिया पर केन्द्रित करेंगे । राजनैतिक प्रक्रिया के मूल में सत्ता की साझेदारी का प्रयास होता है । अत: लोकतांत्रिक राजनीति को समझने के लिए सत्ता की साझेदारी के सरोकार ही हमारे अध्ययन के प्रमुख विषय वस्तु होंगे । इस प्रक्रिया से किस तरह लोकतंत्र विभिन्न सामाजिक समूहों को अभिव्यक्ति एवं पहचान देकर अपने आप में सन्निहित करता है, सर्वप्रथम हम इसका अध्ययन करेंगे । इसके लिए लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ सत्ता के विभाजन के विविध एवं व्यापक प्रावधान करती हैं, अध्याय के अगले हिस्से में हम इसे देखेंगे । इसी क्रम में हम सत्ता की साझेदारी की सबसे प्रभावकारी कार्य प्रणाली के रूप में संघीय शासन व्यवस्था का अध्ययन करेंगे । इस संदर्भ में भी भारतीय संघीय व्यवस्था के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष का भी विश्लेषण करेंगे । हमारे लिए यह भी जानना जरूरी होगा कि किस तरह से हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय समाज की वैविध्यपूर्ण संरचना एवं सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को बनाए रखने के लिए संघीय व्यवस्था में एकात्मकता की भी व्यवस्था की ।

इसके बाद हम भारत में सत्ता विकेन्द्रीकरण के सबसे निचले स्तर की व्यवस्था स्थानीय स्वशासन का अध्ययन करेंगे । इसी क्रम में बिहार में पंचायती राज पर भी एक आलोचनात्मक निगाह डालेंगे ।

© BSTBPC NOT TO BE REPUBLISHED

पिछले अध्याय में हमने देखा कि जब जाति धर्म, रंग, भाषा आदि पर आधारित मानव समूहों को उचित पहचान एवं सत्ता में साझेदारी नहीं मिलती है तो उनके असंतोष एवं टकराव से सामाजिक विभाजन, राजनैतिक अस्थिरता, सांस्कृतिक ठहराव एवं आर्थिक गतिरोध उत्पन्न होते हैं । इसे हमने पूर्व के अध्याय में दिए गए बेल्जियम एवं श्रीलंका के उदाहरणों में स्पष्ट रूप से देखा था । हमने भारत में भी भाषा, जाति, धर्म, क्षेत्र के आधार पर संघर्ष एवं टकराव की घटनाओं का उल्लेख किया था । बेल्जियम ने अपने यहाँ के भाषायी एवं जातीय समूहों के बीच पनपते तनाव को सत्ता में साझीदार बनाकर दूर किया । इसके लिए उसने अपने संविधान में संशोधन कर कुछ विशेष प्रावधानों को शामिल किया जिससे विभिन्न भाषायी एवं जातीय समूहों को शासन में उचित प्रतिनिधित्व मिल सके । इसके विपरीत श्रीलंका में सत्ताधारी सिंहली समुदाय ने तमिल समुदाय के हितों की निरन्तर उपेक्षा की जिससे तमिलों और सिंहलियों के बीच के टकराव ने भीषण गृह युद्ध का रूप ले लिया । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच सत्ता का विभाजन उचित है क्योंकि इसमें विभिन्न सामाजिक समूहों को अभिव्यक्ति एवं पहचान मिलती है । उनके हितों एवं जरूरतों का सम्मान होता है । इससे विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच टकराव की संभावना क्षीण हो जाती है । अतः सत्ता में साझेदारी की व्यवस्था राजनैतिक समाज की एकता, अखंडता एवं वैद्यता की पहली शर्त है ।

लम्बे समय से यह मान्यता चली आ रही थी कि राजनैतिक सत्ता का बंटवारा नहीं हो सकता है । शासन की शक्ति किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह के हाथों में रहनी चाहिए । अगर शासन की शक्तियों का बंटवारा होता है तो निर्णय की शक्ति भी बिखर जाती है । ऐसी स्थिति में निर्णय लेना एवं उसे लागू कराना असम्भव होगा । लेकिन लोकतंत्र ने सत्ता विभाजन को अपना मूल आधार बनाकर इस मान्यता का खंडन कर दिया । लोकतंत्र में जनता सारी शक्तियों का स्त्रोत एवं उपभोग करने वाली होती है । लोक स्वशासन की संस्थाओं के माध्यम से अपना शासन चलाते हैं । सार्वजनिक फैसलों में सबकी भागीदारी होती है । लोकतंत्र में समाज के विभिन्न समूहों एवं विचारों को उचित सम्मान दिया जाता है । लोकतंत्र कैसे विभिन्न सामाजिक समूहों को सन्निहित करता है ।

विविधता मानव समाज का अनिवार्य गुण है । मानवीय सभ्यता के दीर्घकालीन विकास की प्रक्रिया में अनगणित तत्त्वों के प्रभाव की परिणति रंग जाति धर्म पर आधारित विभिन्न मानव समूहों के निर्माण में होती है । इन विभिन्न मानव समूहों के विचारों हितों आकांक्षाओं और मान्यताओं में अन्तर होता है । अत: विभिन्न मानव समूहों की इच्छाओं, पसंद, हितों एवं जरूरतों के बीच अपनी पहचान एवं पोषण के लिए प्रतिद्वदिंता एवं संघर्ष स्वाभाविक रूप से चलता है । इसके साथ इन विभिन्नताओं के बावजूद विभिन्न मानव समूहों की प्रकृति एवं आवश्यकता समाज में साथ रहने की अनिवार्यता होती है । अत: ऐसे संघर्ष को सुलझाने के लिए तथा इस प्रतिस्पर्द्धा को सहयोग में बदलने के लिए विशेष कार्य प्रणाली की आवश्यकता महसूस की जाती है । यह कार्य प्रणाली है सत्ता में साझेदारी की कार्य प्रणाली सबकी सहमति की प्रणाली । अगर इन विभिन्न मानव समूहों के बीच के प्रतिस्पर्द्धा एवं संघर्ष को शक्ति एवं हिंसा के बल पर सुलझाने की कोशिश करते हैं तो जिस समूह के पास ताकत होगी वह दूसरे समूह को दबा देगा । उसकी इच्छाओं एवं हितों का सम्मान नहीं करेगा । कमजोर समूह को शक्तिशाली समूह की बात माननी होगी । लेकिन इससे उनमें असंतोष एवं आक्रोश पैदा होगा । ऐसी स्थिति में विभिन्न समूह ज्यादा समय तक साथ नहीं रह पाएँगे । विभिन्न समूहों को साथ रखने के लिए एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था या कार्य प्रणाली की जरूरत होती है, जिसमें सभी स्थायी रूप से विजेता या पराजित नहीं हो । वैध शासन व्यवस्था वही है जिसमें सभी व्यक्ति अपनी भागीदारी के माध्यम से शासन व्यवस्था से जुड़ते हैं । लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था ही एकमात्र ऐसी शासन व्यवस्था हैं जिसमें ताकत सभी के हाथों में होती हैं, सभी को राजनैतिक शक्तियों में हिस्सेदारी या साझेदारी करने की व्यवस्था की जाती है । गैर लोकतांत्रिक सरकारें जैसे राजशाही, तानाशाही या एक दलीय शासन व्यवस्था जैसी अन्य व्यवस्थाओं में सभी नागरिकों के सत्ता में साझेदारी की जरूरत, व्यवस्था एवं सम्भावना नहीं होती हैं । गैर लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ आमतौर पर अपनी अन्दरूनी समाजिक समूहों और उनमें व्याप्त विभिन्नताओं, अन्तरों, मतभेदों की या तो उपेक्षा करती हैं या उन्हें दबा देती हैं जबकि लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ अपने अन्दर के विभिन्न समूहों के बीच प्रतिद्वंदिताओं एवं सामाजिक विभाजनों को संभालने की प्रक्रिया विकसित कर लेती हैं । जिससे इन टकरावों के विस्फोटक रूप लेने की आशंका क्षीण हो जाती है ।

कोई भी समाज अपने में व्याप्त विविधताओं और विभिन्नताओं को स्थायी तौर पर खत्म नहीं कर सकता है, पर इन अन्तरों, विभेदों और विविधताओं का आदर करने के लिए उन्हें सत्ता में साझीदार बनाकर समाज में सहयोग, सामंजस्य एवं स्थायित्व का सृजन किया जा सकता है। इस कार्य के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ सबसे अच्छी होती हैं क्योंकि आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में सत्ता की साझेदारी के बहुत सारे प्रावधान किए जाते हैं ।

आइए अब देखें कि लोकतंत्र में यह काम कैसे होता है ।

लोकतंत्र में विभिन्न सामाजिक समूहों जैसे भाषायी, धार्मिक एवं अन्य समूहों के बीच सत्ता का बँटवारा होता है । बेल्जियम के सामुदायिक सरकार में फ्रेंच और डच भाषी मंत्रियों की समान संख्या इस बात का उदाहरण है । विश्व में बहुत सारे संविधान में सामाजिक रूप से कमजोर समुदाय एवं महिलाओं को विधायिका एवं प्रशासन में हिस्सेदारी देने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है । हमारा भारतीय संविधान भी इनमें से एक है जहाँ महिलाओं की सत्ता में साझेदारी सुनिश्चित करने के लिए बहुत सारे विशेष प्रावधान किए गए हैं । इसी तरह से हमारे संविधान में अल्पसंख्यकों एवं कमजोर समुदाय के लोगों के लिए भी विशेष व्यवस्था की गई है ।

लोकतंत्र में व्यापारी, उद्योगपति, किसान, शिक्षक, औद्योगिक मजदूर जैसे संगठित हित समूह सरकार की विभिन्न समितियों में प्रतिनिधि बनकर सत्ता में भागीदारी करते हैं या अपने हितों के लिए सरकार पर अप्रत्यक्ष रूप से दवाब डालकर उनके फैसलों को प्रभावित कर सत्ता में अप्रत्यक्ष रूप से हिस्सदारी करते हैं । ऐसे विभिन्न समूह जब सक्रिय हो जाते हैं तब किसी एक समूह का समाज के ऊपर प्रभुत्व कायम नहीं हो सकता है । यदि कोई एक समूह सरकार के ऊपर अपने हित के लिए नीति बनाने के लिए दवाब डालता है तो दूसरा समूह उसके प्रतिकार में दवाब डालता है कि नीतियाँ इस तरह से न बनाई जाए । सरकार को भी ऐसे में पता चलता है कि समाज के विभिन्न वर्ग क्या चाहते हैं तथा उन्हें सत्ता में कैसे और कितनी मात्रा में हिस्सेदार बनाया जाए ।

राजनीतिक दल सत्ता में साझेदारी का सबसे जीवंत स्वरूप है । राजनीतिक दल सत्ता के बँटवारे के वाहक से मोलतोल करनेवाले सशक्त माध्यम होते हैं ।

राजनीतिक दल लोगों के ऐसे संगठित समूह है जो चुनाव लड़ने और राजनैतिक सत्ता हासिल करने के उद्देश्य से काम करता है । अतः विभिन्न राजनैतिक दल सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा के रूप में काम करते हैं । उनकी आपसी प्रतिद्वंदिता यह निश्चित करती है कि सत्ता हमेशा किसी एक व्यक्ति या संगठित व्यक्ति समूह के हाथ में न रहे । अगर हम राजनैतिक दलों के इतिहास पर गौर करें तो पता चलता है कि सत्ता बारी–बारी से अलग–अलग विचारधाराओं और समूहों वाले राजनीतिक दलों के हाथ में आती जाती रहती है ।

सत्ता की साझेदारी का प्रत्यक्ष रूप तब भी दिखता है जब दो या दो से अधिक दलें मिलकर चुनाव लड़ती है या सरकार का गठन करती है । इसलिए सत्ता की साझेदारी का सबसे अद्यतन रूप गठबंधन की राजनीति या गठबंधन की सरकारों में दिखता है, जब विभिन्न विचारधाराओं, विभिन्न सामाजिक समूहों और विभिन्न क्षेत्रीय और स्थानीय हितों वाले राजनीतिक दल एक साथ एक समय में सरकार के एक स्तर पर सत्ता में साझेदारी करते हैं ।

लोकतंत्र में विभिन्न हितों एवं नजरिये की अभिव्यक्ति संगठित तरीके से राजनीतिक दलों के अलावा जनसंघर्ष एवं जनआंदोलन के द्वारा भी होती है । दवाब समूह के समान इस संघर्ष एवं आंदोलन में कई तरह के हित समूह शामिल होते हैं या यह भी हो सकता है कि वे कुछ हितों की बजाय सर्वमान्य हितों के लिए संघर्ष कर रहे हों ।

नेपाल में राजशाही अर्थात् सत्ता के एकाधिकार की व्यवस्था के अंत तथा सत्ता जन निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में सौपने के लिए आंदोलन, बोलिविया का जलयुद्ध, महिलाओं के लिए आरक्षण की सुविधाओं के लिए संघर्ष, सूचना के अधिकार का आंदोलन ये सभी सत्ता में साझेदारी के प्रयत्न के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उदाहरण हैं ।

लोकतंत्र में सरकार की सारी शक्ति किसी एक अंग में सीमित नहीं रहती है बल्कि सरकार के विभिन्न अंगों के बीच सत्ता का बँटवारा होता है । यह बँटवारा सरकार के एक ही स्तर पर होता है । उदाहरण के लिए सरकार के तीनों अंगों–विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच सत्ता का बँटवारा होता है और ये सभी अंग एक ही स्तर पर अपनी–अपनी शक्तियों का प्रयोग करके सत्ता में साझीदार बनते हैं । सत्ता के ऐसे बँटवारे से किसी एक अंग के पास सत्ता

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

का जमाव और एवं उसके दुरुपयोग की संभावना खत्म हो जाती है । साथ ही हरेक अंग एक दूसरे पर नियंत्रण रखता है । इसे नियंत्रण और संतुलन' की व्यवस्था भी कहते हैं । विश्व के बहुंत सारे लोकतांत्रिक देशों जैसे– अमेरिका, भारत आदि में यह व्यवस्था अपनाई गई है ।

सरकार के एक स्तर पर सत्ता के ऐसे बँटवारे को हम सत्ता का क्षैतिज वितरण कहते हैं ।

सत्ता में साझेदारी की दूसरी कार्यप्रणाली में सरकार के विभिन्न स्तरों पर सत्ता का बँटवारा होता है । सत्ता के ऐसे बँटवारे को हम सत्ता का उर्ध्वाधार वितरण कहते हैं ।

इस तरह की व्यवस्था में पूरे देश के लिए एक सामान्य सरकार होती है । प्रांतीय और क्षेत्रीय स्तर पर अलग सरकारें होती है । दोनों के बीच सत्ता के स्पष्ट बँटवारे की व्यवस्था संविधान या लिखित दस्तावेज के द्वारा की जाती है । केन्द्रिय, राज्य या क्षेत्रीय स्तर की सरकारों से नीचे की स्तर की सरकारों के बीच भी सत्ता का बँटवारा होता है इसे हम स्थानीय स्वशासन के नाम से जानते हैं ।

सत्ता के इस बँटवारे को आमतौर संघवाद के नाम से जाना जाता है । यह आधुनिक लोकतंत्र में सत्ता की साझेदारी की कार्यप्रणाली का सबसे लोकप्रिय स्वरूप है । संघीय शासन व्यवस्था एकात्मक शासन व्यवस्था के उलट है जिसमें शासन का एक ही स्तर होता है, बाकी इकाइयाँ उसके अधीन काम करती है । प्रांतीय इकाइयों को केन्द्र सरकार के आदेशों का पालन करना पड़ता है ।

हम संघीय शासन व्यवस्था की विशेषताओं को निम्नलिखित रूप से अंकित कर सकते हैं-

- संघीय शासन व्यवस्था में सर्वोच्च सत्ता केन्द्र सरकार और उसकी विभिन्न आनुसंगिक इकाइयों के बीच बँट जाती है ।
- संघीय व्यवस्था में दोहरी सरकार होती है एक केन्द्रीय स्तर की सरकार जिसके अधिकार क्षेत्र में राष्ट्रीय महत्त्व के विषय होते हैं दूसरे स्तर पर प्रांतीय या क्षेत्रीय सरकारें होती हैं जिनके अधिकार क्षेत्र में स्थानीय महत्त्व के विषय होते हैं ।

- प्रत्येक स्तर की सरकार अपने क्षेत्र में स्वायत होती है और अपने–अपने कार्यों के लिए लोगों के प्रति जवाबदेह या उत्तरदायी होती है ।
- अलग–अलग स्तर की सरकार एक ही नागरिक समूह पर शासन करती है ।
- नागरिकों की दोहरी पहचान एवं निष्ठाएँ होती है वे अपने क्षेत्र के भी होते हैं और राष्ट्र के भी । जैसे कि हममें से कोई बिहारी, बंगाली और मराठी होने के साथ–साथ भारतीय भी होता है ।
- दोहरे स्तर पर शासन की विस्तृत व्यवस्था एक लिखित संविधान के द्वारा की जाती है ।
- विभिन्न स्तरों की सरकारों के अधिकार संविधान में स्पष्ट रूप से लिखे रहते हैं । इसलिए यह दोनों सरकारों के अधिकारों और शक्तियों का मूल स्त्रोत होता है ।
- संविधान के मूल प्रावधानों को किसी एक स्तर की सरकार अकेले नहीं बदल सकती है। इसके लिए दोनों स्तरों की सरकारों की सहमति एवं विशेष प्रक्रिया अपनायी जाती है ।
- एक स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था की जाती है । संविधान एवं विभिन्न स्तरों की सरकारों के अधिकारों की व्यवस्था करने का भी अधिकार होता है तथा यह केन्द्र और और राज्य सरकारों के बीच अधिकारों और शक्ति के बँटवारे के संबंध में उठनेवाले कानूनी विवादों को भी हल करता है ।

© BSTBPC WEB COPY - NOT TO BE REPUBLISHED

संघीय व्यवस्था का गठन– संघीय व्यवस्था आमतौर पर दो तरीकों से गठित होती है ।

कई बार कई स्वतंत्र और संप्रभु राज्य आपस में मिलकर सामान्य संप्रभुता को स्वीकार कर एक संघीय राज्य का गठन करते हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विटजरलैंड, आस्ट्रेलिया इस तरह से गठित संघीय राज्य के उदाहरण हैं ।

आमतौर पर इस तरीके से गठित संघीय व्यवस्था में राज्यों की स्वायत्तता या पहचान की भावना प्रबल होती है, अतः संघ में शामिल होनेवाले राज्यों के अधिकार समान होते हैं । वे केन्द्र

सरकार की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होते हैं क्योंकि इस तरह से गठित संघीय व्यवस्था में आमतौर पर अवशिष्ट अधिकार राज्यों के हिस्से में आते हैं ।

इसके विपरीत जब किसी बड़े देश को अनेक राजनैतिक इकाईयों में बाँटकर वहाँ स्थानीय या प्रांतीय सरकार और केन्द्र में अन्य सरकार की व्यवस्था की जाती है तब भी संघीय सरकार की स्थापना होती है । राज्यों और राष्ट्रीय सरकारों के बीच सत्ता का बँटवारा किया जाता है । भारत, बेल्जियम और स्पेन में संघीय शासन व्यवस्था की स्थापना इसी तरह से की गई है ।

इस तरह से गठित संघीय व्यवस्था में राज्यों की अपेक्षा केन्द्र सरकार ज्यादा शक्तिशाली होती है । इसमें अवशिष्ट अधिकार केन्द्र सरकार को दिए जाते हैं ।

विभिन्न राज्यों को समान अधिकार दिए जाते हैं, लेकिन अक्सर इस व्यवस्था में जरूरत के मुताबिक किसी राज्य को विशेष अधिकार दिए जाते हैं जैसा कि भारतीय संघ में जम्मू कश्मीर, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम आदि राज्यों को विशेष अधिकार दिए गए हैं ।

इस प्रकार संघीय शासन व्यवस्था दोहरे उद्देश्य को लेकर चलती है क्षेत्रीय एवं अन्य विविध ताओं का आदर करना और देश की एकता की सुरक्षा करना, उसे बढ़ाव देना । इसलिए संघवाद में निश्चित और कठोर नियम नहीं होते हैं । शासन के सिद्धांत के रूप में संघवाद भिन्न परिस्थितियों में भिन्न रूप ग्रहण करता है । उदाहरण के लिए संघीय शासन व्यवस्था की शुरूआत अमेरिका से हुई लेकिन जब दूसरे देशों में इसे अपनाया गया तब इसका स्वरूप भिन्न हो गया जैसे कि जर्मनी, भारत और स्विटजरलैंड की संघीय व्यवस्था अमेरिका से भिन्न है ।

केन्द्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन हर संघीय सरकार में वहाँ के ऐतिहासिक अनुभव सामाजिक एवं राजनैतिक जरूरतों के हिसाब से होता है । यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि संघ की स्थापना किन ऐतिहासिक संदर्भों में हुई है ।

इस प्रकार संघीय शासन व्यवस्था दोहरे उद्देश्य को लेकर चलती है– क्षेत्रीय एवं अन्य विविधताओं का आदर करना तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता की रक्षा करना एवं उसे बढ़ावा देना ।

आइए अब देखें कि किस तरह से संघीय व्यवस्था राष्ट्रीय एकता के मूल्यों के संवर्धन में सहायक है । सर्वप्रथम हम अपने देश भारत के परिदृश्य में ही परखने की कोशिश करेंगे ।

भारत भौगोलिक दृष्टिकोण से काफी विशाल एवं जाति, धर्म, भाषा संस्कृति के दृष्टिकोण से विविधताओं से भरा हुआ देश है । यहाँ बीस प्रमुख एवं सैकड़ों अन्य भाषाएँ बोली जाती हैं।

ऐसे देश में अगर हमें एक लोकतांत्रिक व्यवस्था अपनानी थी तो इन विविधताओं को पहचान कर मान्यता देने की आवश्यकता था । विभिन्न क्षेत्रों और भाषा भाषी लोगों की सत्ता में सहभागिता की व्यवस्था करनी थी ताकि लोगों को स्वशासन का अवसर मिले । इसके लिए शासन की शक्तियों को स्थानीय और केन्द्रीय सरकारों के बीच बाँटने की आवश्यकता थी । यह संघीय शासन–व्यवस्था में ही संभव था । भारत बहुत लंबे समय तक विदेशी शासन के अधीन रहा । अतः सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से भी यह बहुत सक्षम नहीं था । अगर भारत के छोटे–छोटे कई राज्य में एकात्मक सरकार की स्थापना की जाती तो संभवतः वे साम्राज्यवादी शक्तियों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे ।

इसके अलावा, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ने भारत में मौजूद उस समय 563 देशी रियासतों को यह अधिकार दिया था कि वे भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में शामिल हो या फिर स्वतंत्र रहें । ऐसी स्थिति में बड़ी संख्या में देशी रियासतें भारत में तभी शामिल हो सकती थीं जब देश में संघीय शासन स्थापित हो ।

भारत में संघवाद का विकास

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय संघर्ष का नेतृत्व करनेवाली काँग्रेस पार्टी शुरू से ही संघीय व्यवस्था की समर्थक रही । उनका अपना संगठनात्मक ढ़ाँचा भी इसी आधार पर किया गया था । 1946 में गठित संविधान सभा का आधार भी संघवाद था क्योंकि इसमं प्रांतों के प्रतिनिधि वहाँ की विधान सभा द्वारा संप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के द्वारा चुने गए थे और देशी रियासतों के अधिकतर प्रतिनिधि को उनके शासकों ने नामजद किया था ।

इस तरह से विविधता को मान्यता देने के साथ राष्ट्रीय एकता के मूल्यों के संवर्धन के लिए संघीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गई ।

भारत में संघीय शासन व्यवस्था

आइए देखते हैं कि हमने ऊपर जिन संघीय विशेषताओं का जिक्र किया है वे सभी भारतीय शासन व्यवस्था में मौजूद हैं या नहीं–

- संघीय व्यवस्था की सबसे पहली शर्त के रूप में भारतीय संविधान में दो तरह की सरकारों की व्यवस्था की गई है– एक संपूर्ण राष्ट्र के लिए जिसे संघीय सरकार या केन्द्रीय सरकार कहते हैं और दूसरी प्रत्येक प्रांतीय इकाई या राज्य के लिए सरकार जिसे हम प्रांतीय या राज्य सरकार कहते हैं ।
- संविधान में स्पष्ट रूप से केन्द्र और राज्य सरकार के कार्य क्षेत्र और अधिकार को बाँटा गया है । विधायी अधिकारों को तीन सूचियों में उल्लिखित किया गया है ।
- संघ सूची में पूरे देश के लिए महत्त्व रखने वाले विषयों यथा प्रतिरक्षा, विदेशनीति, संचार साधन, मुद्रा बैंकिंग आदि विषय रखे गए हैं । इन पर कानून बनाने का अधिकार सिर्फ केंद्र सरकार को है ।
- स्थानीय महत्त्व के विषयों यथा जेल, स्वास्थ्य, शिक्षा पुलिस आदि को राज्य सूची में रखा गया है । इनपर सिर्फ राज्य सरकार कानून बना सकती है ।
- केन्द्र और राज्य दोनों के लिए महत्त्व रखनेवाले विषयों को समवर्त्ती सूची में रखा गया है। इन विषयों पर केन्द्र और राज्य सरकार दोनों ही कानून बना सकती है लेकिन जब एक ही विषय पर केन्द्र और राज्य सरकार दोनों कानून बनाते हैं या दोनों के द्वारा बनाए गए कानूनों में टकराव हो तब केन्द्र सरकार द्वारा बनाया कानून ही मान्य होता है ।
- जो विषय इन तीनों सूचियों में नहीं आते हैं, वैसे अवशिष्ट या बचे हुए विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे दिया गया है ।

- जैसा कि पहले भी कहा गया है कि अधिकतर संघीय व्यवस्था में साझी इकाईयों को बराबर अधिकार नहीं मिलते हैं । भारतीय संघ में भी कुछ राज्य को विशेषाधिकार प्राप्त है । जैसे कि भारत में जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा प्राप्त है । उसका अपना संविधान है, बिना उसकी सहमति के भारतीय संविधान के कई प्रावधानों को वहाँ लागू नहीं किया जा सकता है । उसके स्थानीय निवासियों के अतिरिक्त कोई भारतीय नागरिक वहाँ जमीन या मकान नहीं खरीद सकता है आदि । भारत के कई अन्य राज्यों जैसे अरुणाचल, सिक्किम, मणिपुर आदि के लिए भी कुछ विशेष प्रावधान किए गए हैं । कई ऐसे क्षेत्र हैं– वो अपने भौगोलिक आकार या अन्य कारणवश स्वतंत्र प्रान्त नहीं बन सकते और इन्हें किसी मौजूदा प्रांत में विलय करना भी संभव नहीं होता है, इन क्षेत्रों का शासन चलाने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे दिया जाता है, अतः इन्हें केन्द्र शासित प्रदेश कहा जाता है, चंडीगढ़, लक्षद्वीप, दिल्ली जैसे क्षेत्र इसी तरह के हैं ।

- भारतीय संविधान को कठोर बनाया गया है, ताकि केन्द्र और राज्य के बीच अधिकारों के बँटवारे में आसानी से एवं राज्यों की सहमति के बिना फेर बदल नहीं किया जा सके ।

ऐसे किसी भी बदलाव को संसद के दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत से स्वीकृति मिलनी आवश्यक होती है फिर उसे कम-से-कम आधे राज्यों की विधान सभाओं से मंजूर कराना आवश्यक होता है ।

- स्वतंत्र एवं सर्वोच्च न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है जिसे संविधान की व्याख्या, केन्द्र और राज्य के झगड़े-निपटाने के साथ केन्द्र और राज्य सरकार के द्वारा बनाए गए कानूनों की जाँच करने उन्हें संविधान के विरुद्ध या गैर कानूनी घोषित करने की भी शक्ति प्राप्त होती है ।

- सरकार चलाने एवं अन्य जिम्मेवारियों के निर्वहन के लिए जरूरी राजस्व की उगाही के लिए केन्द्र एवं राज्यों को कर लगाने एवं संसाधन जुटाने का अधिकार प्राप्त है ।

© BSTBPC WEB COPY: NOT TO BE PUBLISHED

संघीय व्यवस्था का कार्यान्वयन

ऊपर हमने भारतीय संघीय व्यवस्था के संवैधानिक एवं संस्थागत प्रावधानों की चर्चा की लेकिन संघीय व्यवस्था के कार्यकरण के लिए लिखित संवैधानिक प्रावधान ही पर्याप्त नहीं होते हैं । संघीय सिद्धांतों का कार्यान्वयन राजनैतिक संस्कृति विचारधारा, इतिहास की वास्तविकताओं से निर्देशित होता है । अगर संघीय इकाइयों में आपसी विश्वास, सहयोग, सम्मान और संयम की संस्कृति रहती है तो संघीय व्यवस्था का कार्यान्वयन आसानी से होता है । राजनैतिक दलों की उपस्थित, सत्ता में साझेदारी के उनके प्रयत्न एवं व्यवहार से भी संघीय व्यवस्था की सफलता या असफलता निर्धारित होती है । यदि कोई इकाई प्रांत, भाषायी, समुदाय या विचारधारा सत्ता पर एकाधिकार चाहती है या उसके लिए प्रयत्नशील होती है तो अन्य इकाइयाँ या प्रांत या भाषायी अन्य समुदाय जो इस प्रयत्न में साथ नहीं है या जिनपर यह सत्ता थोपी जा रही है, या सत्ता में साझेदार के रूप में उनकी अनदेखी की जा रही है, उनमें विरोध, असंतोष पनपता है । ऐसी स्थिति में नाराज इकाइयाँ विरोध प्रदर्शन करती है, अलग होने की माँग कर सकती है, हिंसा का सहारा ले सकती है । नौबत गृहयुद्ध और विघटन तक जा सकती है । विश्व के बहुत सारे देशों को इस तरह के अनुभवों से गुजरना पड़ा है ।

आइए अब विश्व के कुछ ऐसे देशों का उदाहरण लेते हैं जहाँ क्षेत्रीय भाषायी विविधताओं को सम्मान देने के लिए संघीय व्यवस्था अपनायी गई लेकिन सत्ता में साझेदारी के प्रभावकारी साधन के रूप में यह संघीय व्यवस्था कितनी कारगर सिद्ध हुई इसका विश्लेषण करें ।

सोवियत समाजवादी गणराज्यों का संघ विश्व की एक महान शक्ति के रूप में उभरा लेकिन 1989 के बाद अनेक स्वतंत्र राष्ट्रों में उसका विघटन हो गया ।

सोवियत संघ के विघटन का प्रमुख कारण वहाँ शक्तियों का जमाव एवं अत्यधिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ थी । सोवियत राजनैतिक प्रणाली की धूरी में साम्यवादी दल था । इसने उजबेकिस्तान तथा अन्य भिन्न भाषा संस्कृति वाले क्षेत्रों की आकांक्षाओं, हितों की अनदेखी तथा उनपर रूसी आधिपत्य के प्रयत्न ने भी विघटनकारी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया । अन्य राष्ट्रीयताओं और जातीयताओं को शिकायत भी कि संघ के सबसे बड़े गणराज्य रूस की भाषा एवं संस्कृति

उनपर थोपी जा रही थी । सत्ता की हिस्सेदारी में रूसी मूल के नागरिकों की प्रधानता थाी । 1986 में रूसी यद्यपि पूरी आबादी के 52 प्रतिशत थे लेकिन तत्कालीन केन्द्रीय समिति में 85 प्रतिशत सचिव, केन्द्रीय संत्रिमंडल में 85 प्रतिशत सदस्य तथा सेना में 88 प्रतिशत रूसी उच्च शिखरों पर मौजूद थे । विभिन्न गणराज्यों में रूसी नागरिकों की संख्या न सिर्फ बढ़ रही थी वरन् वह स्थानीय लोगों की अपेक्षा अधिक नगरीय एवं समृद्ध थी ।

वेस्टइंडिज संघवाद

वेस्टइंडिज में 1958 में वेस्टइंडिज संघ की स्थापना की गई । लेकिन केन्द्रीय सरकार की कमजोरी एवं संघीय इकाइयों की राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण 1962 में यह भंग हो गई। लेकिन 1973 में चिगुआरायस संधि के द्वारा इन स्वतंत्र प्रायद्वीपों ने एक साझी संसद, सर्वोच्च न्यायालय, मुद्रा और केरीबियन समुदाय नामक साझा बाजार जैसी संयुक्त संस्थाएँ बनायी । इनकी एक साझी कार्यपालिका है और सदस्य देशों की सरकारों के प्रधान उस कार्यपालिका के सदस्य हैं । इस प्रकार वहाँ की इकाईयाँ न तो देश के रूप में रह सकी और न ही वे अलग–अलग रह सकी ।

नाइजीरिया में संघवाद

यदि किसी देश के विभिन्न क्षेत्र और समुदाय एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते तो संघीय व्यवस्था सफल नहीं होती है, इसे हम नाइजीरियन संघीय व्यवस्था के उदाहरण से भी समझ सकते हैं । 1950 में नाइजीरिया में संघीय व्यवस्था की स्थापना की गई लेकिन नाइजीरिया की तीन बड़ी जातीय समूहों– एरूबा, इबो, हउसा फुलानी के द्वारा अपने प्रभाव को बढ़ाने के प्रयास हुए जिससे अन्य जातीय समूहों में भय एवं संघर्ष का माहौल बना और एक सैनिक शासन की स्थापना हुई। 1999 में नाइजीरिया में लोकतंत्र की दुबारा बहाली हुई लेकिन धार्मिक विभेद बरकरार रहे । नाइजीरियाई संघ के सामने यह भी समस्या बनी रही कि तेल संसाधन से प्राप्त राजस्व पर किसका नियंत्रण होगा ।

इस प्रकार नाइजीरिया की विभिन्न संघीय इकाइयों के बीच धार्मिक, जातीय और आर्थिक मतभेद बरकरार है ।

© BSTBPC COPY NOT TO BE PUBLISHED

अत: गणराज्यों द्वारा सत्ता की साझेदारी में अधिक से अधिक भाग लेने के माँग के स्वर उठे लेकिन उनकी उपेक्षा ने अंतत: 1989 में सोवियत संघ को विखंडित कर दिया ।

इसी तरह से कुछ अन्य राज्यों जैसे चेकोस्लोबाकिया, युगोस्लाविया और पाकिस्तान को भी देश विभाजन का दु:ख झेलना पड़ा ।

भारतीय संघ के अक्षुण्ण स्वरूप के लिए, भारतीय संघीय व्यवस्था के कार्यान्वयन का श्रेय इसके लोकतांत्रिक चरित्र को जाता है । भारतीय संघ को भी कई तनावों, समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ा है । भारतीय लोकतंत्र ने भी अपनी विविधताओं एवं विभिन्नताओं को संभालने के लिए उन्हें सत्ता में साझीदार बनाने के लिए बहुत सारे प्रयास किए हैं । भारतीय संघीय इकाइयों का पूर्नगठन संघीय व्यवस्था को मजबूत करने के लिए किया गया । कुछ राज्यों का गठन एक भाषायी समुदाय के लोगों को एक भौगोलिक क्षेत्र के अंदर लाने के लिए किया गया तथा कुछ राज्यों का गठन सांस्कृतिक भौगोलिक अथवा जातीयता की विभिन्नता को रेखांकित करने और उन्हें आदर देने के लिए किया गया । इनमें भाषा नागालैंड, उत्तराखंड और झारखंड जैसे राज्य है ।

भाषानीति

भारत में बहुत सी भाषाएँ बोली जाती है । श्रीलंका में भाषागत भेदभाव राजनैतिक अस्थिरता का बहुत बड़ा कारण रहा है । इसलिए भारतीय संविधान में हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया गया, क्योंकि यह आबादी के 40 प्रतिशत लोगों की भाषा है । इसके साथ ही अन्य भाषाओं के प्रयोग, संरक्षण एवं संवर्धन के उपाय किए गए ।

संविधान के अनुसार सरकारी काम काज की भाषा में अँगेजी के प्रयोग के निषेध के बावजूद गैर हिन्दी भाषी प्रदेशों की माँग के कारण अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहा । तमिलनाडू, में तो इस माँग को लेकर जनआंदोलन उग्र हो उठा था । सरकार ने इस विवाद को हिन्दी के साथ–साथ अँग्रेजी को भी राजकीय कामों में प्रयोग की अनुमति देकर सुलझाया ।

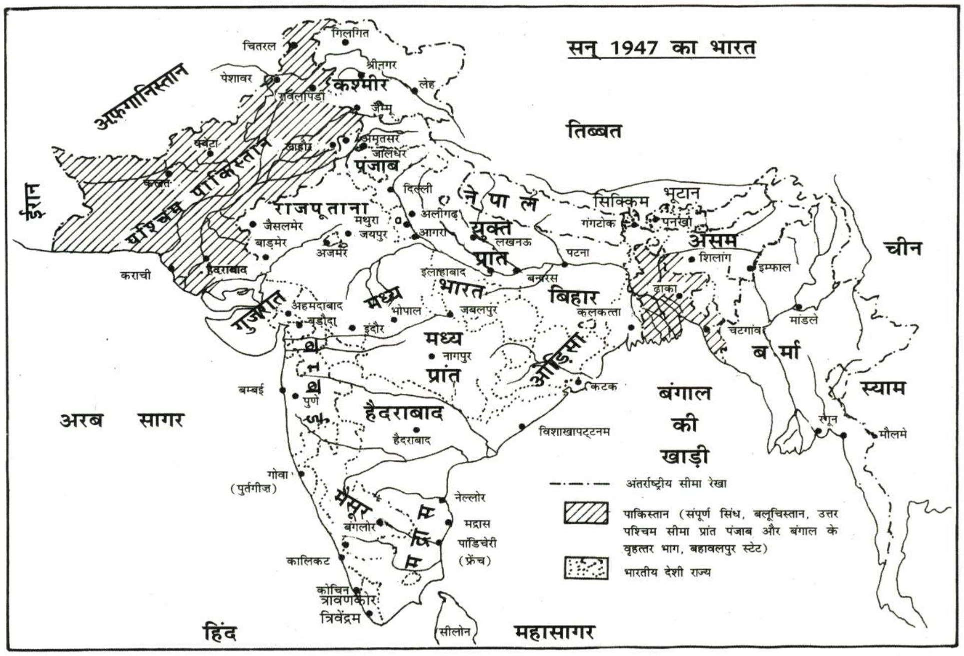

चित्र : सन् 1947 का भारत

किस हद तक सत्ता का विकेन्द्रीकरण राष्ट्रीय एकता के मूल्यों में संवर्धन में सायक है– भारतीय संघ सत्ता के विकेन्द्रीकरण के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों की पहचान को मान्यता देता है फिर भी यह केन्द्र को ज्यादा शक्ति देता है । संविधान निर्माता विविधताओं को समेटने के लिए संघीय व्यवस्था की स्थापना के पक्षधर के पर विघटनकारी प्रवृतियों पर अंकुश रखने एवं सामाजिक राजनैतिक परिवर्तन को द्रुत गति से लाने के लिए वे शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की भी स्थापना करना चाहते थे और ऐसा करने में वे राज्य सरकारों से अपेक्षित सहयोग भी चाहते थे । गरीबी निरक्षरता, आर्थिक असमानता आदि कुछ ऐसी समस्याएँ भी जिनके समाधान के लिए नियोजन (planning) और समन्वय की अत्यंत आवश्यकता थी । अत: केन्द्रीय सरकार की शक्तिशाली स्थिति को हम इस तरह देख सकते हैं ।

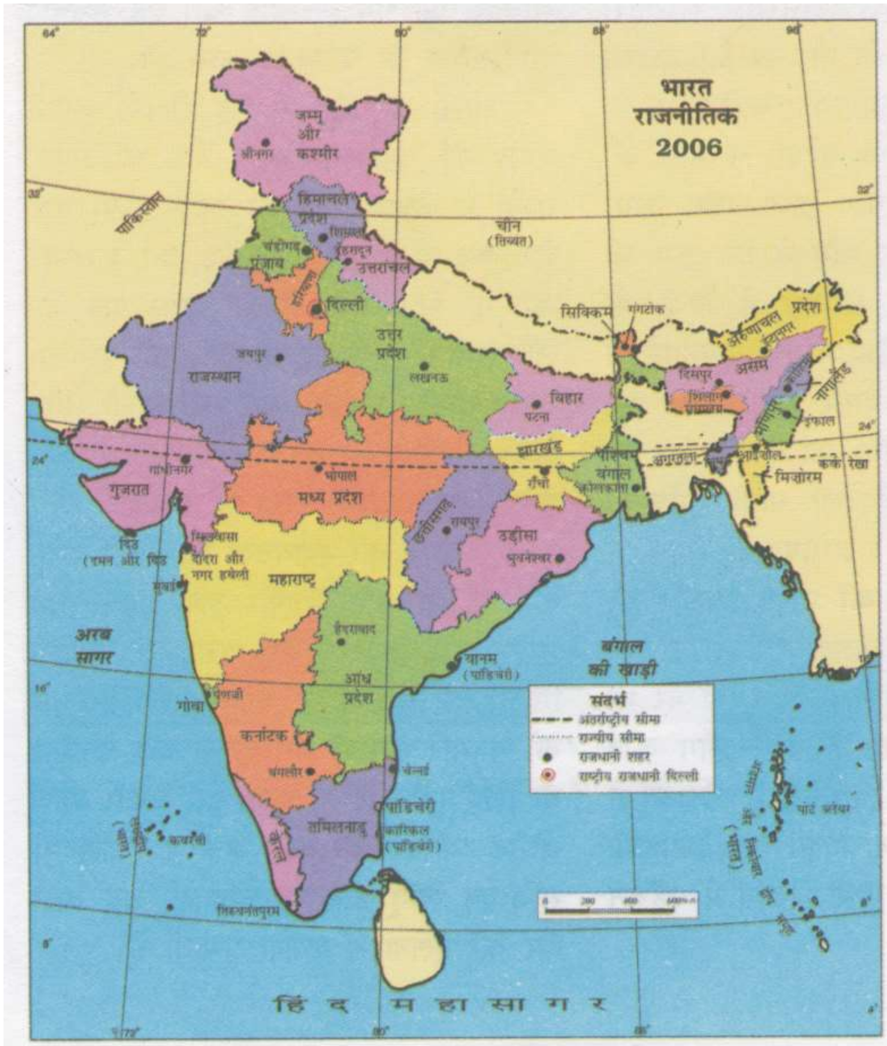

चित्र : भारत राजनीति 2000

- किसी राज्य के अस्तित्व और उसकी भौगोलिक सीमाओं के स्थायित्व पर संसद का नियंत्रण है । वह किसी राज्य की सीमा या नाम में परिवर्तन कर सकती है । पर इस शक्ति का दुरुपयोग रोकने के लिए प्रभावित राज्य के विधानमंडल को भी विचार व्यक्त करने का अवसर प्रदान किया गया है ।

भारत की भाषायी विविधता

भारत में कितनी भाषाएँ है ? इसका जवाब इस बात पर निर्भर करता है कि आप भाषाओं की गिनती किस तरह करते हैं । इस बारे में अधिकृत नवीनतम सूचना 1991 की जनगणना के आँकड़ों से हासिल होती है । इस जनगणना में लोगों ने 1500 से ज्यादा अलग-अलग भाषाओं को अपनी मातृभाषा के रूप में दर्ज कराया था। इन भाषाओं को कुछ प्रमुख भाषाओं के साथ समूहबद्ध कर दिया जाता है । जैसे– भोजपुरी, मगही, बुंदेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, भीली और ऐसी ही दूसरी भाषाओं को हिन्दी के अंदर जोड़ दिया जाता है। ऐसी समूहबद्धता के बाद भी जनगणना में 114 प्रमुख भाषाएँ पाई गई । इनमें से 22 भाषाओं को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में रखा गया है और इसी कारण इन्हें अनुसूचित भाषाएँ कहा जाता है । बाकी को गैर-अनुसूचित भाषा कहते हैं । भाषा के हिसाब से भारत दुनिया का संभवत: सबसे ज्यादा विविधता वाला देश है । साथ लगी सूची को देखने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि कोई एक भाषा बहुसंख्यक भारतीयों की मातृभाषा नहीं है । सबसे बड़ी भाषा हिन्दी को भी सिर्फ 0.20 फीसदी लोगों ने इसे अपनी मातृभाषा बताया था । दूसरी या तीसरी भाषा के तौर पर 11 फीसदी लोग इसे जानते थे ।

- इस सूची को गौर से देखें लेकिन इसे याद करने की जरूरत नहीं है, सिर्फ इन कामों की कीजिए–
- इस सूचना के आधार पर बार या पाई चार्ट बनाएँ।
- भारत की भाषायी विविधताओं को दर्शाने वाला एक नक्शा बनाइए । नक्शे में विभिन्न इलाकों को अलग-अलग रंग से भरें और दिखाएँ कि उन इलाकों के लोग कौन-सी भाषा बोलते हैं ।
- ऐसी तीन भाषाएँ ढूँढें जिनको भारत में बोला तो जाता है पर जो इस सूची में नहीं है ।

भारत की अनुसूचित भाषाएँ

भाषा	बोलने वालों का अनुपात (%)
असमिया	1.6
बांग्ला	8.3
बोडो	0.1
डोगरी	0.2
गुजराती	4.9
हिंदी	40.2
कन्नड़	3.9
कश्मीरी	0.5
कोकणी	0.2
मैथिली	0.9
मलयालम	3.6
मणिपुरी	0.2
मराठी	7.5
नेपाली	0.3
ओड़िया	3.4
पंजाबी	2.8
संस्कृत	0.01
संथाली	0.6
सिंधी	0.3
तमिल	6.3
तेलुगु	7.9
उर्दू	5.2

इस चार्ट के पहले खाने में भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में दर्ज भाषाओं को लिखा गया है । दूसरे खाने में भारत की आबादी में इस भाषा को बोलने वालों का प्रतिशत अनुपात दिया गए है । ये आँकड़े 1991 की जनगणना पर आधारित है । कश्मीरी और डोगरी के आँकड़े पर आधारित हैं क्योंकि 1991 में जम्मू-कश्मीर में जनगणना नहीं हुई थी ।

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

- संविधान में केन्द्र को अत्यंत शक्तिशाली बनानेवाले कुछ आपातकालीन प्रावधान है जिसके लागू होने पर वह हमारी संघीय व्यवस्था को केन्द्रियकृत व्यवस्था में बदल देते हैं । आपातकाल के दौरान शक्तियाँ कानूनी रूप से केन्द्रियकृत हो जाती है । संसद को राज्य के अधिकार क्षेत्र में आनेवाले विषयों पर भी कानून बनाने की शक्ति प्रदान हो जाती है।

- सामान्य स्थितियों में भी केन्द्र सरकार को अत्यन्त प्रभावी वित्तीय शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व प्राप्त है । आय के प्रमुख संसाधनों पर केन्द्र का नियंत्रण है । केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त योजना आयोग राज्यों के संसाधनों एवं इनके प्रबंध की निगरानी करता है । इसके अलावा केन्द्र सरकार अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कर राज्यों को ऋण एवं अनुदान देती है ।
- राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए तथा राज्य सरकार को हटाने तथा विधानसभा भंग करने की सिफारिश भी राष्ट्रपति को भेज सकता है ।
- विशेष परिस्थिति में केन्द्र सरकार राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है ।
- भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था इकहरी है । इसमें चयनित पदाधिकारी राज्यों के प्रशासन का कार्य करते हैं लेकिन राज्य न तो उनके विरूद्ध कोई अनुशासनात्मक कारवाई कर सकता है, न ही उन्हें सेवा से हटा सकते हैं ।
- संविधान के दो अनुच्छेद 33 एवं 34 संघ सरकार की शक्ति के उस स्थिति में काफी बढ़ा देते हैं जब देश के किसी क्षेत्र में 'सैनिक शासन' लागू हो । संसद को अधिकार मिल जाता है कि ऐसी स्थिति में वह केन्द्र या राज्य के किसी अधिकारी के द्वारा शांति व्यवस्था बनाए रखने या उसकी बहाली के लिए किए गए किसी कार्य को कानूनन जायज करार दे सके। इस तरह से हम देखते हैं कि भारतीय संविधान ने कुछ विशेष प्रावधानों के द्वारा केन्द्रीकृत व्यवस्था लागू करके तथा शक्तिशाली केन्द्र के द्वारा संघात्मकता में एकात्मकता की आत्मा को संवर्धित करने का प्रयास किया है ।

केन्द्र राज्य संबंध– संघीय व्यवस्था के तनाव एवं सहयोग । एक ओर केन्द्र शक्तिशाली स्थिति में हैं दूसरी ओर राज्यों की पहचान को भी मान्यता है । अतः केन्द्र और राज्यों

के संबंध संघीय व्यवस्था के कार्यकरण की परीक्षा के लिए एक कसौटी का काम करते हैं । काफी समय तक हमारे यहाँ एक पार्टी का केन्द्र और राज्यों में वर्चस्व रहा । इस दौरान केन्द्र राज्य संबंध सामान्य रहे । जब केन्द्र और राज्य में अलग–अलग दल की सरकार रही तो केन्द्र सरकारों ने राज्यों के अधिकारों की अनदेखी की । अत: राज्यों ने केन्दीय सरकार की शक्तियों का विरोध करना शुरू कर दिया तथा राज्यों को और स्वायत्तता एवं शक्तियाँ देने की मांग की । उन दिनों अक्सर केन्द्र सरकार संवैधानिक उपबन्धों का दुरुपयोग कर विपक्षी दलों की राज्य सरकार को भंग कर देती थी । 1980 के दशक में केन्द्रीय सरकार ने जम्मू एवं आंध्र की निर्वाचित सरकार को बर्खास्त कर दिया था । यह संघीय भावना के प्रतिकूल काम था । भारतीय संघीय व्यवस्था में राज्यपाल की भूमिका केन्द्र और राज्यों के बीच हमेशा से विवाद का विषय रही विशेषकर वैसी परिस्थिति में जब केन्द्र और राज्य में अलग–अलग दल सत्तारूढ; रहे । राज्यपाल की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा होती है, अत: राज्यपाल के फैसलों एवं सिफारिश अक्सर राज्य सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप के रूप में देखा जाता है ।

1990 के बाद स्थिति काफी बदली । कांग्रेस का वर्चस्व कम हुआ । केन्द्र में गठबंधन की राजनीति का उदय हुआ । जब किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला है तब प्रमुख राष्ट्रीय पार्टियों को क्षेत्रीय दलों समेत अनेक पार्टियों का गठबंधन बनाकर सरकार बनानी पड़ती है । इससे सत्ता में साझेदारी और राज्य सरकारों की स्वायत्तता का आदर करने की नयी संस्कृति पनपी है। इस प्रवृत्ति को सुप्रीम कोर्ट के एक बड़े फैसले से भी बल मिला । इस फैसले के कारण राज्य सरकार को मनमाने ढ़ंग से भंग करना केन्द्र सरकार के लिए मुश्किल हो गया ।

भारत में विकेन्द्रीकरण

भारत जैसे विशाल एवं वैविधयपूर्ण राष्ट्र में सिर्फ दो स्तरों पर सत्ता के विकेन्द्रित व्यवस्था से अच्छी तरह शासन नहीं चलाया जा सकता था । इसलिए सत्ता को तीसरे और सबसे निचले स्तर तक विकेन्द्रित करने की व्यवस्था की गई जिसके केन्द्र और राज्य से शक्तियाँ लेकर स्थानीय सरकारों को दी जाती है ।

इस तरह के विकेन्द्रीकरण के पीछे यह भावना काम करती है कि जो काम स्थानीय स्तर

पर किए जा सकते हैं वे काम स्थानीय लोगों के हाथों में ही रहने चाहिए । उन्हें स्थानीय जीवन से जुड़े मसलों, जरूरतों और विकास के बारे में फैसला लेने की प्रक्रिया से जोड़ा जा सके । स्थानीय जनता प्रादेशिक या केन्द्रीय सरकार से कहीं ज्यादा स्थानीय समस्याओं से परिचित होती है क्योंकि इसका सीधा असर उसकी रोजमर्रा की जिंदगी पर पड़ता है । स्थानीय फैसलों में भागीदारी से लोगों में लोकतांत्रिक भागीदारी की आदत पड़ जाती है ।

स्थानीय संस्थाओं की मौजूदगी ने शासन में जनता की भागीदारी के लिए व्यापक मंच एवं माहौल तैयार कर लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत किया है । पंचायतों एवं नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण के प्रावधान के कारण स्थानीय निकायों में महिलाओं की भारी संख्या में मौजूदगी सुनिश्चित हुई है । अनुसूचित जाति एवं जनजाति के आरक्षण से सामाजिक बनावट में बदलाव आए हैं और सामाजिक, आर्थिक ताकत से वंचित लोगों को सत्ता में हिस्सेदारी देने से लोकतंत्र की सार्थकता सिद्ध हुई है ।

लेकिन इसके बावजूद बहुत सी दिक्कते हैं जिनसे स्थानीय शासन का काम काज ठीक से नहीं चल पाता है । अधिकांश राज्य सरकारों ने स्थानीय सरकारों को पर्याप्त अधिकार एवं संसाधन नहीं दिए हैं । पंचायतों के चुनाव नियमित रूप से होते हैं । लेकिन ग्राम सभाओं की बैठकें नियमित रूप से नहीं होती है । स्थानीय स्वशासन के कामकाज के पिछले दशकों के अनुभव बताते हैं कि भारत में इसे अपना कामकाज स्वतंत्रतापूर्वक करने की छूट बहुत कम है ।

बिहार में पंचायती राज व्यवस्था की एक झलक

बिहार में स्वशासन की जड़ें काफी पुरानी हैं । वैशाली का लिच्छवी गणतंत्र लोकतांत्रिक स्वशासन का अच्छा उदाहरण था । वैदिक ग्रंथों में भी सभा और समिति जैसी संस्थाओं का उल्लेख आता है । हमारे सांस्कृतिक विरासत की एक अनोखी विशेषता यह रही है कि स्थानीय प्रशासन की मूलभूत इकाई ग्राम ही रहा है । हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भी कहा करते थे कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है ।

भारतीय संविधान में देश की विरासत और गाँधीवादी मूल्यों को महत्त्व देते हुए स्थानीय स्वशासन को राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 40 में स्थान दिया गया है । इस अनुच्छेद में राज्य को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह ग्राम पंचायतों के गठन, उनकी शक्तियाँ और कार्य तथा उन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में कार्य करने हेतु सक्षम बनाने के लिए कदम उठाये ।

राष्ट्रीय स्तर पर पंचायती राज्य प्रणाली की विधिवत शुरूआत बलवंत राय मेहता समिति की अनुशंसाओं के आधार पर 2 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नागौर जिले से हुई थी । 1959 में ही आंध्र प्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई । इसके बाद देश के अन्य राज्यों में भी पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना होने लगी ।

बलवंत राय मेहता समिति ने पंचायत व्यवस्था के लिए त्रि-स्तरीय ढाँचा का सुझाव दिया–

1. ग्राम स्तर पर पंचायत
2. प्रखंड स्तर पर पंचायत समिति या क्षेत्रीय समिति
3. जिला स्तर पर जिला परिषद ।

चूँकि स्थानीय स्वशासन राज्य का विषय है इसलिए राज्यों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार समितियों की सिफारिशों पर पंचायती राज का गठन किया । इस दृष्टि से पंचायती राज प्रणाली में एकरूपता का अभाव है । पूरे देश में पंचायती राज व्यवस्था मं एकरूपता लाने के उद्देश्य से सन् 1991 में 73वाँ संविधान संशोधन विधेयक संसद में लाया गया जो 22-23 दिसम्बर 1992 को क्रमशः लोकसभा एवं राज्य सभा द्वारा पारित हो गया । फलतः संविधान के एक नये भाग-9 में पंचायत शीर्षक के अंतर्गत **पंचायती राज अधिनियम** को सम्मिलित किया गया। इसमें 13 अनुच्छेदों वाला एक नया अनुच्छेद 243 रखा गया है । इस संशोधन द्वारा एक नयी अनुसूची (ग्यारहवीं अनुसूची) जोड़ी गई है । इसमें 29 मुद्दों का उल्लेख है, जो पंचायती राज के क्षेत्रधिकार में आते हैं । पंचायती राज प्रणाली की स्थापना जनता में लोकतांत्रिक चेतना जागृत करने के उद्देश्य से की गई है । साथ ही, यह भी अपेक्षा है कि इससे सामाजिक परिवर्तन होगा और सामाजिक न्याय के अधूरे कार्य पूरे होंगे ।

© BSTBPC WEB COPY, NOT TO BE REPUBLISHED

बिहार में पंचायती राज का स्वरूप त्रिस्तरीय

(क) ग्राम पंचायत

(ख) पंचायत समिति

(ग) जिला परिषद

कार्यकाल– **पाँच वर्षीय**

(क) ग्राम पंचायत

बिहार में ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों की स्वायत्त संस्थाओं में सबसे नीचे का स्तर है, लकिन इसका स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । राज्य सरकार 7000 की औसत आबादी को ग्राम पंचायतों की स्थापना का आधार मानती है । एक पंचायत क्षेत्र लगभग 500 की आबादी पर वार्डों में विभक्त होता है, जिनकी संख्या सामान्तया 15–16 तक होती है । वार्ड सदस्य प्रत्येक मतदाता द्वारा चुने जाते हैं । ग्राम पंचायतों का प्रधान मुखिया होता है और उसकी सहायता के लिए एक उपमुखिया का पद सृजित किया गया है । हर पंचायत में सरकार की ओर से एक पंचायत सेवक नियुक्त होते हैं, जो सचिव की भूमिका निभाते हैं ।

प्रत्येक ग्राम पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर जगह आरक्षित करने का प्रावधान है । बिहार पंचायती राज अधिनियम 2006 के तहत महिलाओं के लिए संपूर्ण सीटों में आधा सीट अर्थात 50 प्रतिशत के आरक्षण का प्रावधान है । ग्राम पंचायतों का प्रधान मुखिया होता है । मुखिया या उपमुखिया अपने पद से स्वयं हट सकते हैं या हटाये जा सकते हैं । स्वेच्छा से हटने के लिए उन्हें **जिला पंचायती राज पदाधिकारी** को त्याग–पत्र देना पड़ता है । यदि ग्राम पंचायतों के सदस्य दो–तिहाई बहुमत से मुखिया के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करें तो मुखिया/उपमुखिया अपने पद से हटाये जा सकते हैं।

ग्राम पंचायत के सामान्य कार्य– (i) पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए वार्षिक योजना तथा वार्षिक बजट तैयार करना, (ii) प्राकृतिक विपदा में सहायता करने का कार्य, (iii) सार्वजनिक संपत्ति से अतिक्रमण हटाना और (iv) स्वैच्छिक श्रमिकों को संगठित करना और सामुदायिक कार्यों में स्वैच्छिक सहयोग करना ।

ग्राम पंचायत की शक्तियाँ– (i) संपत्ति अर्जित करने, धारण करने और उसके निपटने की तथा उसकी संविदा करने की शक्ति, (ii) करारोपण (वार्षिक कर) जेसे– जल कर, स्वच्छता कर, मेलों–हाटों में प्रबंध कर, वाहनों के निबंधन पर फीस तथा क्षेत्राधिकार में चलाए व्यवसायों नियोजनों पर कर तथा (iii) राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा पर संचित निधि से सहायक अनुदान प्राप्त करने का अधिकार ।

ग्राम पंचायत की आय के स्त्रोत निम्नवत होंगे– (i) कर स्त्राोत– होल्डिंग, व्यवसाय, व्यापार, पेशा और नियोजन ।

(ii) **फीस और रेंट**– वाहनों का निबंधन, तीर्थ स्थानों, हाटों और मेलों, जलापूर्ति, गलियों और अन्य स्थानों पर प्रकाश, शौचालय और मूत्रालय ।

(iii) **वित्तीय अनुदान**– राज्य वित्त आयोग की अनुशंसा के आधार पर राज्य सरकार द्वारा पंचायतों को संचित निधि से अनुदान भी दिया जाता है ।

ग्राम पंचायतों के प्रमुख अंग

1. ग्रामसभा
2. मुखिया
3. ग्राम रक्षादल/दलपति
4. ग्राम कचहरी

ग्रामसभा– यह पंचायत की व्यवस्थापिका सभा है । ग्राम पंचायत क्षेत्र में रहनेवाले सभी वयस्क स्त्री–पुरुष जो 18 वर्ष से अधिक उम्र के हैं, ग्रामसभा के सदस्य होंगे । ग्रामसभा की बैठक वर्ष भर में कम–से–कम चार बार होगी । मुखिया ग्रामसभा की बैठक बुलाएगा और इसकी अध्यक्षता करेगा ।

ग्राम रक्षादल– एक गाँव की पुलिस व्यवस्था है । इसमें 18 से 30 वर्ष के आयु वाले युवक

WEB COPY ©BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

शामिल हो सकते हैं । सुरक्षा दल का एक नेता होता है जिसे दलपति कहते हैं । इसके ऊपर गाँव की रक्षा और शांति का उत्तरदायित्व रहता है ।

ग्राम कचहरी– यह ग्राम पंचायत की अदालत है जिसे न्यायिक कार्य दिए गए हैं । बिहार में ग्राम पंचायत की कार्यपालिका और न्यायपालिका को एक–दूसरे से अलग रखा गया है । प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक ग्राम कचहरी स्थापित की जाएगी जिसमें प्रत्यक्ष निर्वाचित एक **सरपंच** तथा इसमें प्रत्येक 500 की आबादी के हिसाब से निर्वाचित पंच होंगे । इनका कार्यकाल 5 वर्ष का होगा । **सरपंच** ग्राम कचहरी का प्रभारी होगा । ग्राम कचहरी को दिवानी एवं फौजदारी दोनों क्षेत्रों में अधिकार प्रदान किए गए हैं । **सरपंच** सभी प्रकार के अधिकतम 10 हजार तक के मामले की सुनवाई कर सकता है । ग्राम कचहरी में एक **न्याय मित्र** और एक **न्याय सचिव** भी होता है । **न्याय मित्रों** एवं न्याय सचिवों के पदों का निर्माण बिहार सरकार द्वारा किया जाए । **न्याय मित्र** सरपंच के कार्यों में सहयोग देता है, जबकि **न्याय सचिव** ग्राम कचहरी के कागजातों को रखता है ।

(ख) पंचायत समिति

पंचायत समिति **पंचायती राज व्यवस्था** का दूसरा या मध्य स्तर है । वास्तव में यह ग्राम पंचायत और जिला परिषद् के बीच की कड़ी है। बिहार में 5000 की आबादी पर पंचायत समिति के एक सदस्य को चुने जाने का प्रावधान है । इसके अतिरिक्त पंचायत समिति के क्षेत्र के अन्दर आनेवाले समिति के प्रमुख का चुनाव अप्रत्यक्ष रीति से किया जाता है । प्रमुख/उपप्रमुख के उम्मीदवार प्रत्यक्ष निर्वाचित सदस्यों में से होते हैं तथा उन्हीं के मतों से बनाए जाते हैं । प्रमुख पंचायत समिति का प्रधान अधिकारी होता है । वह समिति की बैठक बुलाता है और उसकी अध्यक्षता करता है । वह पंचायत समिति के कार्यों की जाँच–पड़ताल करता है और प्रखंड विकास पदाधिकारी पर नियंत्रण रखता है ।

प्रखंड विकास पदाधिकारी पंचायत समिति का पदेन सचिव होता है । वह प्रमुख के आदेश पर पंचायत समिति की बैठक बुलाता है । वह पंचायत समिति के निर्णयों को क्रियान्वित करता

है तथा उसके कोष से धन खर्च करता है । वह पंचायतों का निरीक्षण करता है और अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों का संपादन करता है ।

पंचायत समिति के कार्य– पंचायत समिति सभी ग्राम पंचायतों की वार्षिक योजनाओं पर विचार–विमर्श करती है तथा समेकित योजना को जिला परिषद् में प्रस्तुत करती है।

यह ऐसे कार्यकलापों का संपादन एवं निष्पादन करती है जो राज्य सरकार या जिला परिषद् इसे सौंपती है । इसके अतिरिक्त, सामुदायिक विकास कार्य एवं प्राकृतिक आपदा के समय राहत का प्रबंध करना भी इसकी महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है ।

पंचायत समिति अपना अधिकांश कार्य स्थायी समितियों द्वारा करती है ।

(ग) जिला परिषद

बिहार में जिला परिषद् **पंचायती राज व्यवस्था** का तीसरा स्तर है । 50,000 की आबादी पर जिला परिषद् का एक सदस्य चुन जाता है । ग्राम पंचायत और पंचायत समिति के चुनाव की तरह इसमें भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ी जाति और महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान है । जिला परिषद् के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत जिला की सभी पंचायत समितियाँ आती है ।

जिला परिषद् का कार्यकाल **पाँच** वर्ष का होता है । जिले की सभी पंचायत समितियों के प्रमुख इसके सदस्य होते हैं । प्रत्येक जिला परिषद् का एक **अध्यक्ष** एवं **उपाध्यक्ष** होता है। उनका निर्वाचन जिला परिषद् के सदस्य अपने सदस्यों के बीच से पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए करते हैं । प्रत्येक पाँच वर्ष के अवसान पर पंचायतों की वित्तीय स्थिति का पुनरावलोकन करने हेतु 'राज्य वित्त आयोग' का गठन किया जाता है ।

पंचायती राज संस्थानों को संवैधानिक दर्जा प्रदान होने के बाद इन्हें मनमाने तरीके से विघटित नहीं किया जा सकता है । विघटन की स्थिति में 6 माहों के अन्दर चुनाव करवाना जरूरी है । पंचायतों के लिए निर्वाचन नियमावली तैयार करवाने और पंचायतों के सभी निर्वाचनों के

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

संचालन, निष्पादन व नियंत्रण के लिए निर्वाचन आयोग उत्तरदायी है । पंचायतों के लिए निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राज्यपाल करता है ।

बिहार पंचायती राज अधिनियम 2005 के द्वारा महिलाओं के लिए संपूर्ण सीटों में आधी सीट अर्थात 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है । इसके अलावा अनुसूचित जाति एवं जनजाति एवं अत्यंत पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए भी आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।

बिहार में नगरीय शासन-व्यवस्था

बिहार में नगरों एवं कस्बों में स्थानीय स्वशासन का एक गौरवशाली इतिहास रहा है । **मनुस्मृति** और **महाभारत** में इनका उल्लेख मिलता है । यूनानी विद्वान मेगास्थनीज ने अपनी पुस्तक **इंडिका** में मौर्य साम्राज्य की राजधानी **'**पाटलीपुत्र**'** के नगरपालिका संगठन के बारे में विस्तार पूर्वक लिखा है । **चाणक्य** जो **चंद्रगुप्त** का प्रधानमंत्री था, उसकी पुस्तक **'**अर्थशास्त्र**'** में भी **'**पाटलिपुत्र**'** के नगर प्रशासन का वर्णन किया । स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद नगरपालिका प्रशासन का पूरी तरह से पुनर्गठन और सुधार किया गया है ।

ग्राम पंचायत की तरह नगरीय शासन-व्यवस्था बिहार में प्राचीन काल से प्रचलित रही है। भारतीय संसद ने 74वाँ संविधान संशोधन 1992 में पारित करके नगरीय शासन व्यवस्था को सर्वप्रथम सांविधानिक संशोधन 1992 में पारित कर नगरीय स्वशासन व्यवस्था को सर्वप्रथम सांविधानिक मान्यता प्रदान की है । नगरपालिका के कार्यक्षेत्र विषय संविधान की 12वीं अनुसूची में उल्लिखित है ।

अपने बिहार में कोई महानगर नहीं है, अत: हमारे राज्यों में नगरों के स्थानीय शासन के लिए निम्न तीन प्रकार की संस्थाएँ हैं–

1. नगर पंचायत,
2. नगर परिषद् तथा
3. नगर निगम ।

1. नगर पंचायत– ऐसे स्थान जो गाँव से शहर का रूप लेने लगते हैं वहाँ स्थानीय शासन चलाने के लिए **नगर पंचायत** का गठन किया जाता है । जिस शहर की जनसंख्या 12,000 से 40,000 के बीच हो वहाँ नगर पंचायत की स्थापना की जाती है । नगर पंचायत के लिए एक आवश्यक खर्च यह है कि उस शहर के व्यस्कों की तीन चौथाई जनसंख्या कृषि से भिन्न कार्य में संलग्न हो । नगर पंचायत के सदस्य वहाँ के बार्डो से मतदाताओं द्वारा सीधे चुनकर आते हैं। कुछ सदस्यों का मनोनयन राज्य सरकार द्वारा की जाती है । नगर पंचायत के सदस्यों की संख्या 10 से 37 तक होती है । सदस्यों का कार्यकाल पाँच वर्षों का होता है । नगर पंचायत का एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष होता है जो अपने सदस्यों के बीच से चुने जाते हैं । अध्यक्ष नगर पंचायत के सभी कार्यों को करता है । अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके कार्यों का संपन्न करता है ।

2. नगर परिषद्– नगर पंचायत से बड़े शहरों में नगर परिषद् का गठन किया जाता है। वैसे शहर जिसकी जनसंख्या कम–से–कम 2,00000 से 3,00000 के बीच होती है, वहाँ नगर परिषद् की स्थापना की जाती है नगर परिषद् का गठन वेसे शहर में की जाती है जहाँ पूरी जनसंख्या का तीन चौथाई भाग अपनी आजीविका के लिए कृषि छोड़ अन्य कार्य में लगे रहते हैं । साथ ही इन शहरों में जनसंख्या का घनत्व प्रतिवर्ग किलोमीटर 400 व्यक्ति होनी चाहिए।

नगर परिषद के अंग– नगर परिषर्द के चार अंग होते हैं–

1. नगर पर्षद,
2. समितियाँ,
3. अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष तथा
4. कार्यपालक पदाधिकारी ।

1. नगर पर्षद– नगर परिषद् का एक प्रमुख अभिकरण नगर पर्षद होता है । इसके सदस्य पार्षद या कमिश्नर कहलाते हैं । इसकी सदस्य संख्या कम–से–कम दस और अधि क–से–अधिक 40 होती है । इसके अस्सी प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होत हैं और शेष 20 प्रतिशत

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

सदस्य मनोनित होते हैं । पार्षद का कार्यकाल 5 वर्षों का होते है । राज्य सरकार पूरी पर्षद को भंग कर सकती है । नगर पर्षद की बैठक महीने में एक बार होती है । नगर पर्षद के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष तथा एक उपाध्यक्ष का चुनाव करते हैं ।

2. समितियाँ– नगर परिषद् के कार्यों को सुचारू रूप से संचालन के लिए नगर परिषद् की कई समितियाँ होती है । समितियाँ को नगर पर्षद नियुक्त करती है । इन समितियों में 3 से 6 सदस्य होते हैं । ये समितियाँ अलग–अलग विषयों के लिए होती है, जैसे– शिक्षा समिति, जन–स्वास्थ्य समिति, वित्त समिति, अस्पताल समिति आदि । ये समितियाँ नगर परिषद् को सलाह देती हैं और बहुत से अन्य कार्यों का संपादन करती है ।

3. अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष– बिहार के प्रत्येक नगर परिषद में एक मुख्य पार्षद (अध्यक्ष) एवं उपमुख्य पार्षद (उपाध्यक्ष) होता है । इन दोनों का चुनाव नगर पर्षद के सदस्यों द्वारा होता है । इनका कार्यकाल पाँच वर्षों का होता है । किंतु इसके पहले भी इन्हें हटाया जा सकता है । नगर पार्षद नगर परिषद् का प्रधान होता है। वह उसके सभी कार्यों की देखभाल करता है । वह नगर परिषद् के नियमों को लागू करता है। मुख्य पार्षद अपने शहर का प्रथम नागरिक समझा जाता है । अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसके सभी कार्यों का संपादन करता है।

4. कार्यपालक पदाधिकारी– प्रत्येक नगर परिषद् में एक कार्यपालक पदाधिकारी का पद होता है । इसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है । नगर परिषद् के प्रशासन को चलाने वाला यह प्रधान अधिकारी होता है। नगर परिषद् में कुछ अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी भी होते हैं ; जैसे– स्वास्थ्य अधिकारी, शिक्षा निरीक्षक, कनीय अभियंता, टैक्स दरोगा आदि । ये सब कार्यपालक पदाधिकारी को सलाह एवं सहायता देते हैं ।

नगर परिषद् के कार्य– अब तक हमने देखा कि नगरीय शासन व्यवस्था के अंतर्गत नगर परिषद् एक महत्त्वपूर्ण इकाई है । इसीलिए नगर परिषद् को बहुत से कार्य करने पड़ते हैं । नगर परिषद् के दो तरह के कार्य हैं– अनिवार्य एवं ऐच्छिक । अनिवार्य कार्य वे हैं जिन्हें नगर परिषद् को करना जरूरी होता है। ऐच्छिक कार्य ऐसे कार्य हैं जिन्हें नगर परिषद् अपनी इच्छानुसार अथवा आवश्यकतानुसार करता है ।

नगर परिषद् के अनिवार्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. नगर की सफाई कराना
2. सड़कों एवं गलियों में रोशनी का प्रबंध करना
3. पीने के पानी की व्यवस्था करना
4. सड़क बनाना तथा उसकी मरम्मत करना
5. नालियों की सफाई करना
6. प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध करना, जैसे स्कूल खोलना और उसे चलाना
7. टीके लगाने तथा महामारी से बचाव का उपाय करना
8. मनुष्यों एवं पशुओं के लिए अस्पताल खोलना
9. आग से सुरक्षा करना
10. श्मशान घाट का प्रबंध करना
11. जन्म एवं मृत्यु का निबंधन करना एवं उनका लेखा–जोखा रखना ।

ऐच्छिक कार्य–

1. नई सड़क बनाना
2. गलियों एवं नालियाँ बनाना
3. शहर के गंदे इलाके को बसने योग्य बनाना
4. गरीबों के लिए घर बनवाना
5. बिजली का प्रबंध करना
6. प्रदर्शनी लगाना
7. पार्क, बगीचा एवं अजायबघर बनाना
8. पुस्तकालय एवं वाचनालय आदि का प्रबंध करना, आदि ।

नगर परिषद के आय के स्रोत– नगर परिषद् विभिन्न प्रकार के कर लगाती है एवं कर

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

वसुलती भी है । जैसे– मकान कर, पानी कर, रोशनी कर, नाली कर, बाजार कर, मनोरंजन कर आदि । इसके अतिरिक्त नगर के बाहर से नगर में बिक्री के लिए आनेवाले समानों पर नगर परिषद् सीमा कर वसुलती है जिसे आमतौर पर चुंगी कहा जाता है।

शहर में चलने वाली बैलगाड़ी, टमटम, साइकिल, रिक्सा आदि पर भी नगर परिषद् वार्षिक कर वसूल करती है । इसके अलावे राज्य सरकार समय-समय पर अनुदान भी देती है जिसे आय के रूप में जाना जाता है ।

3. नगर निगम– जैसा कि हम जानते हैं कि राज्यों में नगरों के स्थानीय शासन के लिए तीन प्रकार की संस्थाएँ होती है । इन तीनों संस्थाओं में नगर निगम बड़े-बड़े शहरों में स्थापित की जाती है। अर्थात् जिस शहर की जनसंख्या 3 लाख से अधिक होती है वैसे शहरों में नगर निगम की स्थापना की जाती है । भारत में सर्वप्रथम 1688 ई० में मद्रास (चेन्नई) नगर निगम की स्थापना की गई । बिहार में सर्वप्रथम पटना में 1952 में नगर निगम की स्थापना की गई। प्रत्येक नगर निगम को जनसंख्या के अनुरूप कई क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है । जिसे वार्ड कहा जाता है । नगर निगम में वार्डों की संख्या उस शहर के जनसंख्या पर निर्भर करता है । वार्डों के निर्धारण में आरक्षण के नियमों का पालन किया जाता है । जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अत्यंत पिछड़ों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाती है । बिहार में नगर निगम में 50 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया गया है । बिहार में एक नगर निगम में वार्डों की न्यूनतम संख्या 37 और अधिकतम 75 हो सकती है । पटना नगर निगम में 72 वार्ड है, गया नगर निगम में 35, भागलपुर नगर निगम में 51, मुजफ्फरपुर नगर निगम एवं दरभंगा नगर निगम में 48 बिहार शरीफ नगर निगम में 46 एवं आरा नगर निगम में 45 वार्ड निर्धारित है ।

नगर निगम के प्रमुख अंग– बिहार में नगर निगम के प्रमुख अंग होते हैं–

1. निगम परिषद
2. सशक्त स्थानीय समिति
3. परामर्शदात्री समितियों
4. नगर आयुक्त

1. निगम परिषद– समूचे नगर निगम क्षेत्र को विभिन्न क्षेत्रों (वार्डों) में बाँटा जाता है । इस तरह से विभक्त प्रत्येक क्षेत्रों से उस क्षेत्र के मतदाताओं द्वारा एक–एक प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आते हैं । इन्हें वार्ड पार्षद या वार्ड कॉंसिलर कहते हैं । पार्षदों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है । निर्वाचित सदस्यों के अलावा विशेषहितों के प्रतिनिधि करने वाले समूह जैसे– चैम्बर ऑफ कामर्स, व्यापार संघ एवं निर्बंधित स्नातक के सदस्य भी परिषद् के सदस्य होते हैं । सभी निर्वाचित सदस्यों के साथ मनोनीत सदस्य मिलकर कई सहयोजित सदस्यों का चयन करते हैं । इसके अलावे आमंत्रित सदस्यों के रूप में उस नगर निगम क्षेत्र के सांसद, स्थानीय विधायक एवं स्थानीय पार्षद होते हैं । निगम परिषद की बैठक प्रत्येक महीने होती है । निगम परिषद् का प्रमुख कार्य नियम बनाना, निर्णय लेना तथा कर (टैक्स) लगाना है ।

महापौर एवं उपमहापौर– निगम परिषद अपने सदस्यों के बीच से एक महापौर एवं उपमहापौर चुनती है । इन दोनों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है । महापौर निगम परिषद् का सभापति होता है तथा निगम की बैठकों की अध्यक्षता करता है । साथ ही सशक्त स्थायी समिति की भी अध्यक्षता करता है । महापौर नगर का प्रथम नागरिक माना जाता है । इस नाते वह नगर में आये अतिथियों का स्वागत नगर की ओर से करता है । महापौर की अनुपस्थिति में नगर परिषद् के सभी कार्यभार उपमहापौर संपादन करते हैं ।

2. सशक्त स्थानीय समिति– निगम परिषद् के बाद यह नगर निगम का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग होता है । महापौर एवं उपमहापौर भी इस समिति के सदस्य होते हैं । इस समिति की अध्यक्षता महापौर द्वारा की जाती है । निगम परिषद् के सभी प्रमुख कार्य सशक्त समिति द्वारा ही की जाती है । यह समिति कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति करने के अतिरिक्त नगर आयुक्त पर भी नियंत्रण रखती है ।

3. परामर्शदात्री समितियाँ– नगर निगम में कुछ परामर्शदायी समितियाँ भी होती है, जैसे– शिक्षा समिति, बाजार एवं उद्यान समिति आदि । ये समितियाँ अपने–अपने विषयों पर निगम परिषद् को सलाह देती है ।

© BSTBPC WEBCOPY NOT TO BE PUBLISHED

4. नगर आयुक्त– नगर निगम के इस पदाधिकारी की नियुक्ति बिहार सरकार द्वारा की जाती है । यह प्रायः भारतीय प्रयासनिक सेवा स्तर का पदाधिकारी होता है । नगर आयुक्त नगर निगम का मुख्य प्रशासक होता है एवं नगर के सभी कर्मचारियों के कार्यों की देखभाल करता है । नगर आयुक्त कुछ कर्मचारियों की भी नियुक्त कर सकता है । नगर आयुक्त निगम परिषद् एवं सशक्त स्थायी समिति द्वारा किये गये निर्णय के अनुरूप कार्य का संपादन करता है।

नगर निगम के प्रमुख कार्य– नगर निगम नागरिकों की स्थानीय आवश्यकता एवं सुख–सुविधा के लिए अनेक कार्य करता है । नगर निगम के कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. नगर क्षेत्र की नालियों, पेशाब खाना, शौचालय आदि निर्माण करना एवं उसकी देखभाल करना ।
2. कुड़ा कर्कट तथा गंदगी की सफाई करना ।
3. पीने के पानी का प्रबंध करना ।
4. गलियों, पूलों एवं उद्यानों की सफाई एवं निर्माण करना ।
5. मनुष्यों तथा पशुओं के लिए चिकित्सा केन्द्र की स्थापना करना एवं छुआ–छुत जैसी बिमारी पर रोक लगाने का प्रयास करना ।
6. प्रारंभिक स्तरीय सरकारी विद्यालयों, पुस्तकालयों, अजायबघर की स्थापना तथा व्यवस्था करना ।
7. विभिन्न कलयाण केन्द्रों जैसे मृत केन्द्र, शिशु केन्द्र, वृद्धाश्रम की स्थापना एवं देखभाल करना ।
8. खतरनाक व्यापारों की रोकथाम, खतरनाक जानवरों तथा पागल कुत्तों को मारने का प्रबंध करना ।
9. दुग्ध–शाला की स्थापना एवं प्रबंध करना ।
10. आग बुझाने का प्रबंध करना ।
11. मनोरंजन गृह का प्रबंध करना ।
12. जन्म, मृत्यु का पंजीकरण का प्रबंध करना ।

13. नगर की जनगणना करना ।
14. नये बाजारों का निर्माण करना ।
15. नगर में बस आदि चलवाना
16. श्मशानों तथा कब्रिस्तानों की देखभाल करना
17. गृह उद्योग तथा सहकारी भंडारों की स्थापना करना आदि ।

नगर निगम के आय के प्रमुख साधन—नगर निगम के आय के प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं—

1. नगर निगम कई प्रकार के कर लगाता है । जैसे— मकान कर, जलकर, शौचालय कर, पशुओं पर कर, छोटे वाहनों पर कर आदि ।
2. बिहार सरकार द्वारा समय–समय पर दिया गया आर्थिक अनुदान ।

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

प्रश्नावली

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Question)

I. सही विकल्प चुनें ।

1. संघ राज्य की विशेषता नहीं है
   (क) लिखित संविधान　　(ख) शक्तियों का विभाजन
   (ग) इकहरी शासन–व्यवस्था　　(घ) सर्वोच्च न्यायपालिका
2. संघ सरकार का उदाहरण है
   (क) अमेरिका　　(ख) चीन
   (ग) ब्रिटेन　　(घ) इनमें से कोई नहीं
3. भारत में संघ एवं राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन कितनी सूचियों में हुआ है
   (क) संघीय सूची, राज्य सूची
   (ख) संघीय सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची

II. निम्नलिखित में से कौन-सा कथन सही है ।

1. सत्ता में साझेदारी सही है क्योंकि
   (क) यह विविधता को अपने में समेट लेती है
   (ख) देश की एकता को कमजोर करती है
   (ग) फैसले लेने में देरी कराती है
   (घ) विभिन्न समुदायों के बीच टकराव कम करती है
2. संघवाद लोकतंत्र के अनुकूल है ।
   (क) संघीय व्यवस्था केन्द्र सरकार की शक्ति को सीमित करती है ।
   (ख) संघवाद इस बात की व्यवस्था करता है कि उस शासन-व्यवस्था के अंतर्गत रहनेवाले लोगों में आपसी सौ।हार्द एवं विश्वास रहेगा । उन्हें इस बात का भय नहीं रहेगा कि एक की भाषा, संस्कृति और धर्म दूसरे पर लाद दी जाएगी।

III. नीचे स्थानीय स्वशासन के पक्ष में कुछ तर्क दिये गये हैं, इन्हें आप वरीयता के क्रम से सजाएँ ।

1. सरकार स्थानीय लोगों को शामिल कर अपनी योजनाएँ कम खर्च में पूरी कर सकती है?
2. स्थानीय लोग अपने इलाके की जरूरत, समस्याओं और प्राथमिकताओं को जानते हैं ।
3. आम जनता के लिए अपने प्रदेश के अथवा राष्ट्रीय विधायिका के जनप्रतिनिधियों से संपर्क कर पाना मुश्किल होता है ।
4. स्थानीय जनता द्वारा बनायी योजना सरकारी अधिकारियों द्वारा बतायी योजना में जयादा स्वीकृत होती है ।

अति लघु उत्तीय प्रश्न (Very-Short Answer Questions)

1. संघ राज्य का अर्थ बताएँ ।
2. संघीय शासन की दो विशेषताएँ बताएँ ।

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short-Answer Question)

1. सत्ता की साझेदारी से आप क्या समझते हैं ?
2. सत्ता की साझेदारी लोकतंत्र में क्या महत्त्व रखती है ?

3. सत्ता की साझेदारी के अलग-अलग तरीके क्या है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long- Answer Questions)

1. राजनैतिक दल किस तरह से सत्ता में साझेदारी करते हैं ?
2. गठबंधन की सरकारों में सत्ता में साझेदारी कौन-कौन होते हैं ?
3. दवाब समूह किस तरह से सरकार को प्रभावित कर सत्ता में साझेदार बनते हैं ?

निम्नलिखित में से किसी एक कथन का समर्थन करते हुए 50 शब्दों में उत्तर दें ।

- ⇨ हर समाज में सत्ता की साझेदारी की जरूरत होती है, भले ही वह छोटा हो या उसमें सामाजिक विभाजन नहीं हो।
- ⇨ सत्ता की साझेदारी की जरूरत क्षेत्रीय विभाजन वाले बड़े देशों में होती है ।
- ⇨ सत्ता की साझेदारी की जरूरत क्षेत्रीय, भाषायी जातीय आधार पर विभाजन वाले समाज में ही होती है ।

*

© BSTBPC WEB COPY ,NOT TO BE PUBLISHED